P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-10* June- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

देश के विकास में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की भूमिका

पुनीत कुमार श्रीवास्तव
विभागाध्यक्ष,
वाणिज्य विभाग,
गाँधी फैज–ए–कॉलेज,
शाहजहांपुर

सारांश

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना का मूल उद्देश्य सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में बैकिंग सुविधाएं उपलब्ध कराकर ग्रामीणों का आर्थिक विकास करना है। यह विकास छोटे व सीमान्त कृषक, भूमिहीन मजदूर, ग्रामीण दस्तकार, लघु उद्योग व व्यवसाय में लगे लोगों व समाज की विभिन्न आर्थिक सेवाओं से जुड़े पिछड़े वर्ग को पर्याप्त मात्रा में साख–सुविधा उपलब्ध कराने से हो सकता है। इस प्रकार वाणिज्यिक बैंको की भाँति क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भी रिजर्व बैंक द्वारा दिये गये निर्देशों का पालन करते हुये उपयोग अधिकांशतः प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों का साख प्रदान करते है। वित्तीय संरचना के विस्तार के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको द्वारा प्रायोजित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की स्थापना भी की गयी थी।

मुख्य शब्द : ग्रामीण बैंक, उत्पादक ऋण, भारतीय रिजर्व बैंक।

प्रस्तावना

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की स्थापना का मूल उद्देश्य भारत का ग्रामीण विकास एवं कृषि विकास करना है। ग्रामीण विकास एवं कृषि विकास दोनो एक दूसरे के पूरक है।

क्षेत्र के विकास में बैंको की एक विशिष्ट भूमिका होने के अनुरूप क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको ने अपने स्थापना काल से वर्तमान काल तक प्रगति के नये आयाम स्थापित किये है। अपनी स्थापना से अब तक की अल्प अवधि में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ने देश के अर्द्धनगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय सुविधाओं को अधिक से अधिक उपलब्ध कराये जाने के दृष्टिकोण से अपनी शाखाओं को तीव्रता से विस्तार किया है। वर्तमान में सम्पूर्ण देश में 196 ग्रामीण बैंकों की स्थापना हो चुकी है। जिनकी 14313 शाखाओं से देश के 500 जनपद आवृत है।

भारतीय बैकिंग जगत में व्यापक आर्थिक सुधारों का क्रम 1991 में प्रारम्भ किया गया। इस परिपेक्ष्य में, वित्तीय सुधार समिति का अभिमत था कि इन सुधारों के कार्यान्वयन से बैंको की वित्तीय स्थिति में पारदर्शिता आएगी। इस क्रम में आय निर्धारण, आस्ति वर्गीकरण, पूंजी–पर्याप्तता के मापदण्डों को लागू किया गया। अब भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋणों पर ब्याज दरों की अविनियमन की धारण को मूर्त रूप प्रदान किया। इससे भारतीय बैकिंग जगत में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का वातावरण एवं बैकिंग के नयै युग का सूत्रपात हुआ (एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हुई) जिससे ग्रामीण वित्त के नये अवसर एवं चुनौतियाँ भी उभरी है।

वित्तीय एंव विकासात्मक गतिविधि एवं गतिशील प्रक्रिया है जिसका कार्य किसी युग में समाप्त नहीं होता है। बदलता हुआ सामाजिक–आर्थिक पर्यावरण, नव विकास एवं नवीन साख आवश्यकताओं के बीच अंकुरित करके संवर्द्धन के नये आयाम सृजित करता रहता है। बदलती हुई परिस्थितियां के अनुकूल ग्रामीण आवश्यकताओं में भी परिवर्तन आता रहता है। इन परिवर्तन जन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वित्तीय एवं विकासात्मक गतिविधि का कार्य क्षेत्र और अधिक व्यापक एवं विस्तृत हो जाता है। इस महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन करने हेतु आर्थिक भारतीय नव बैंकिग के क्षेत्र में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का ग्रामीण विकास हेतु वित्त पोषण गतिविधियों का मूल्यांकन महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको ने नवीन वर्तमान प्रतिस्पर्धा के कारण अपने लक्ष्यों के प्राप्त करने में कहाँ तक सफलता प्राप्त की है ? इसका मूल्यांकन समीचीन हो जाता है क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने ग्रामीण आर्थिक विकास में अपनी भूमिका का निर्वाहन किस प्रकार किया है ? क्या क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक द्वारा प्रदत्त वित्त पोषण से ग्रामीण क्षेत्रों को वित्तीय एवं विकासात्मक सहयोग प्राप्त हुआ है ? ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों मे बैंकिंग आदत की जागरूकता के विकास में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की क्या भूमिका रही है ? उक्त का निष्पक्ष मूल्यांकन ही प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य है।

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-10* June- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

अध्ययन का उद्देश्य

ग्रामीण विकास के साथ–साथ कृषि ग्रामीण विकास होता है और कृषि विकास के साथ–साथ ग्रामीण विकास होता है। ये दोनो विकास रूपी गाड़ी के दो पहिये है। यदि एक भी पहिया निकाल दिया जाये तो यह विकास रूपी गाड़ी नहीं चल सकेगी। इसलिए यदि ग्रामीण विकास करना है, तो उस देश का कृषि विकास भी करना होगा और यदि कृषि विकास करना है तो उस देश का ग्रामीण विकास भी करना अनिवार्य होगा।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का स्वरूप

वर्ल्ड डेवलपमेन्ट रिपोर्ट 2005 के अनुसार क्रय–शक्ति समता की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी बड़ी अर्थव्यस्था है। क्रय–शक्ति समता के आधार पर भारत की प्रति व्यक्ति आय 2880 डालर है। वैसे क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में सातवां तथा जनसंख्या की दृष्टि से दूसरा स्थान है। यहां का कुल क्षेत्रफल विश्व भूमि का 2.42 प्रतिशत अर्थात् 32.87 लाख वर्ग किमी है जिसका 20.55 प्रतिशत अर्थात् 675.5 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्रफल तथा 47 प्रतिशत अर्थात 142.6 मिलियन हैक्टेयर कृषि क्षेत्रफल है। इसकी जनसंख्या 102. 5 करोड़ है। जिसमें 53 करोड़ पुरूष तथा 49.4 करोड़ महिलाएं है। भारतीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक ढांचे की मूल बातों का गहनता से परीक्षण करने पर इसमें निम्न विशेषताएं दृष्टिगेचर होती है :–

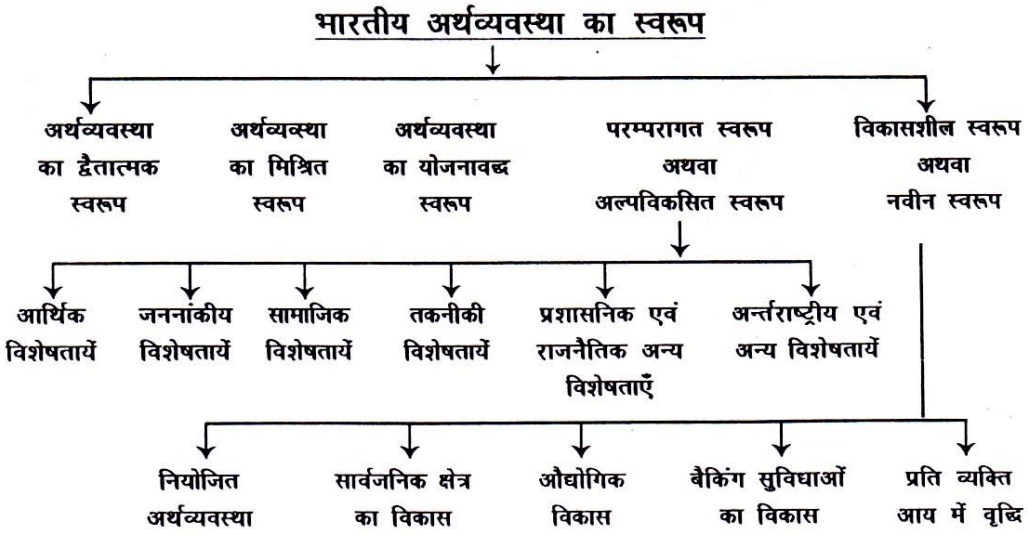

अर्थव्यवस्था का द्वैतात्मक रूवरूप

भारतीय अर्थव्यवथा प्रमुख रूप से दो वर्गो में विभक्त है। एक ओर तो अर्थव्यवस्था का ग्रामीण अथवा परम्परागत क्षेत्र है जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा आत्मनिर्भर कृषि तथा कृषि आधारित ग्रामीण, लघु एवं कुटीर उद्योगों पर आश्रित तथा परिवहन व आधारभूत संरचना के अभाव से ग्रसित है। यहां वस्तु विनिमय का चलन अधिक दृष्टिगत होता है तथा आर्थिक जीवन में सामाजिक रीति रिवाजों का सर्वोपरि स्थान होता है।

दूसरी ओर अर्थव्यवस्था का शहरी अथवा आधुनिक क्षेत्र है जो अपेक्षाकृत अधिक जटिल, आत्मनिर्भर, बैंकिंग, परिवहन, व्यापार, शिक्षा, प्रशिक्षण आदि आधार भूत संरचनाओं से परिपूर्ण तथा उत्पादन के आधुनिकतम संसाधनों को प्रयुक्त करने वाला है। यहाँ विनियम वस्तु के माध्यम से न होकर मुद्रा के माध्यम से होता है।

अर्थव्यवस्था के इसी द्वैतात्मक स्वरूप के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय नीतियों का अर्थव्यवस्था पर समान प्रभाव में इसके इच्छित दिशा में नियमन तथा नियन्त्रण में अनेकानेक कठिनाइयों से जूझना पड़ता है। किन्तु वर्तमान में ग्रामीण अंचल में संचालित विकास कार्यक्रमों तथा आधारभूत संरचनों के फलस्वरूप द्वैतात्मक स्वरूप के दोष शनैः–शनैः दूर होने लगे है।

अर्थव्यवस्था का मिश्रित स्वरूप

भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक क्रियायें सामान्यतया निम्न दो क्षेत्रों से संचालित होती हैः–

1. सार्वजनिक क्षेत्र
2. निजी क्षेत्र

सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत संसाधनों का स्वामित्व सरकार के हाथों में होता है और उनको प्रयुक्त करने की आवश्यक रूपरेखा सरकार स्वयं सार्वजनिक हित व कल्याण को दृष्टिगत रखकर करती है। जबकि निजी क्षेत्र में संसाधनों का स्वामित्व तथा उसके प्रयुक्तिकरण का अधिकार निजी हाथों मे होने से आर्थिक क्रियाओं का संचालन निजी हितों तथा लाभों को दृष्टिगत रखकर बाजार तन्त्र के आधार पर होता है।

अर्थव्यवस्था का योजनाबद्ध स्वरूप

भारतीय अर्थव्यवस्था एक योगना बद्ध अर्थव्यवस्था है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त राष्ट्र की आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति हेतु सन् 1951 से पंचवर्षीय आर्थिक योजना नीति को अंगीकार किया गया है। भारतवर्ष मे आयोजन का स्वरूप अधिकेन्द्रित अथवा समाजवादी न होकर लोकतन्त्रीय है। जिसके अन्तर्गत निजी क्षेत्र को वांछित दिशा देने हेतु विभिनन सुविधाओं, प्रोत्साहन, नियन्त्रण बाजार विनियम आदि की सर्वोत्तम व्यवस्था की जाती है और अति विशिष्ट आर्थिक विषयों के

संबन्ध में लोगों को कोई छूट नहीं होती है। वास्तव मे योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था से अभिप्राय एक ऐसी अर्थव्यवस्था से होता है। जिसमें एक निश्चित अवधि में सुनिश्चित एवं सुपरिभाषित सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न उपलब्ध संसाधनों का विदोहन, समन्वय एवं नियन्त्रण, विवेकपूर्ण ढंग से किया जाता है ताकि संसाधनों का अधिकतम उपयोग सम्भव हो।

भारत में ग्रामीण वित्त का ऐतिहासिक सिंहगावलोकन

भारत के उत्तर में सिंधु, गंगा–यमुना नदियों तथा पूर्व में ब्रह्मपुत्र द्वारा सिंचित उपजाऊ मैदान के कारण भारत में व्यवस्थित कृषि का लम्बा इतिहास रहा है। दक्षिण भारत की अपनी नदियां है तथा इसके अतिरिक्त, इस क्षेत्र की विशेषता बेहतर जल प्रबंधन प्रणाली का प्रभावी इतिहास रहा है। यह संभवतः ऐतिहासिक रूप से सर्वाधिक विकसित रहा है। विडंबना यह है कि इस प्राकृतिक ऊर्वरता तथा जल की पर्याप्त उपलब्धता के परिणामस्वरूप भारत में जनसंख्या घनत्व बढ़ा तथा साथ ही साथ विभिन्न मात्राओं मे गरीबी भी बढ़ी।

इन नदी प्रणालियों के बाबजूद, भारत में कृषि हमेशा मानसून पर काफी अधिक निर्भर रही है तथा इसलिए कृषि संबन्धी गतिविधि में जोखिम निहित रहा है। विभिन्न अवधियों में विभिन्न शासकों के समय में, और सबसे बाद में ब्रिटिश साम्राज्य में दुर्वह ग्रामीण कर व्यवस्था रही है। इन वर्षो में किसानों की उपभोग पद्धति को सहज बनाने के लिए मौसमी जरूरतों तथा उतार–चढ़ाव के परिणामस्वरूप ऋण की देशी व्यवस्था का विकास हुआ। मानसून की बार–बार विफलता तथा कृषि के अन्य प्रचलित उतार–चढ़ावों के कारण ग्रामीण ऋणग्रस्तता भारतीय कृषि की गंभीर तथा निरंतर समस्या बनी रही है। पारंपरिक कृषि गतिविधि में निहित उच्च जोखिम के कारण उच्च ब्याज दर का प्रचलन अपवाद के बजाय सामान्य मानदण्ड बन गया है, तथा इसके फलस्वरूप इसके साथ ही साथ शोषण और दुख प्रायः देखे गये है। इसलिए ग्रामीण वित्त व्यवस्था का विकास मूलरूप से बहुत कठिन पाया गया है तथा जैसा कि हम देख रहे है, पिछले सौ वर्षो से इस मुद्दे के प्रति सरकार की चिंता बनी हुई है।

ग्रामीण वित्त के लिए पहले किये गये प्रभाव

ये समस्याएं 1870 के दशक से ही ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार का ध्यान आकृष्ट करने लगी थी, कृषि का संस्थागत ऋण देने की प्रथा की शुरूवात उस अवधि में हुई जब सूखा के दौरान सरकार द्वारा किसानों को ऐसे ऋण प्रदान किये गयें ऋण संबन्धी सहयोग शुरू करने का विचार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आया। आखिरकार सहकारी संस्था अधिनियम 1904 में पारित हुआ तथा सहकारी संस्थाएँ कृषि ऋण संवितरण की प्रमुख संस्थाएं मानी जानी लगीं। कुछ दशकों के लिए अर्थात रिजर्व बैंक के गठन के काफी पहले देश की, विशेषकर, ग्रामीण क्षेत्रों की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने में भारत मे सहकारी संगठन की क्षमता में काफी आस्था व्यक्त की गयी। बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षो की विशेषता थी– ग्रामीण ऋण के प्रावधान के लिए निरंतर सरकारी ध्यान : 1912 में एक नया अधिनियम पास किया गया जिसमे क्रेडिट संस्थाओं तथा ऐसी अन्य संस्थाओं (व्यष्टि वित्त की पुरोगामी), को कानूनी मान्यता दी गयी; भारत में सहकारिता पर मैकलागन समिति ने 1915 मे एक रिपोर्ट जारी की जिसमें प्रांतीय सहकारी बैंक की स्थापना 1930 तक प्रायः सभी प्रांतो में की गयी। इस प्रकार तीन–स्तरीय सहकारी ऋण संरचना का विकास हुआ, कृषि संबन्धी रॉयल कमीशन ने 1926–27 में ग्रामीण वित्त के कार्यक्रम की और जांच की, सर मैल्कम डार्लिग ने भारतीय रिजर्व बैंक के गठन के ठीक पहले सहकारी ऋण पर एक अन्य रिपोर्ट 1935 में भारत सरकार को प्रस्तुत की। यह सतत चिंता ग्रामीण वित्त के विस्तार (को उपलब्ध कराने) की मूलभूत समस्या को दर्शाता है जो कुछ सीमा तक आज भी देखी जाती है। उस समय यह रिपोर्ट किया गया कि कई प्रांतो में इन क्रेडिट सहकारी संस्थाओं का क्रेडिट बकाया कुल बकाया राशि का 60 से 70 प्रतिशत था।

रिजर्व बैंक की स्थापना 1935 में की गयी

केन्द्रिय बैंको में भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम इस अर्थ मे असाधारण है कि कृषि ऋण के संबन्ध में ध्यान देने के लिए इसमें कृषि ऋण के विशिष्ट उपबंध है। अधिनियम की धारा 54 में यह प्रावधान किया गया है कि रिजर्व बैंक कृषि ऋण विभाग की स्थापना करें जिसमे दक्ष कर्मचारी हो ताकि केंन्द्र सरकार, राज्य सरकार, राज्य सहकारी बैंक और अन्य बैंक को सलाह दी जा सकें, तथा कृषि ऋण के लिए भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यो में समन्वय कायम किया जा सके। अधिनियम की धारा 17 में यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्य सहकारी बैंको अथवा कृषि ऋण के कारोबार मे संलग्न अन्य किसी बैंक के जरिए कृषि ऋण उपलब्ध कराये।

कृषि ऋण में रिजर्व बैंक की पहली गतिविधियों में 1936 और 1937 मे किये गये दो अध्ययन सम्मिलित थे। यह देखा गया कि कृषकों द्वारा आपेक्षित लगभग संपूर्ण वित्त की आपूर्ति साहूकारों द्वारा की गयी थी तथा सहकारी संस्थाओं तथा एजेन्सियों की भूमिका नगण्य थी। 1935 से 1950 की अवधि के दौरान रिजर्व बैंक कई उपायों के जरिये सहकारी ऋण आंदोलन को पुर्नजीवित करने के सतत प्रयास में काफी सक्रिय रहा सहकारिता आंदोलन को वित्तीय सहायता प्रदान करने के अतिरिक्त सहकारी संस्थाओं की ऋण संरचना के निर्माण में भारतीय रिजर्व बैंक ने मुख्य भूमिा निभायी जो क्रमशः दो पृथक रूप मे विकसित हुई जिसमें पहला अल्पावधि ऋण तथा दूसरे दीर्घावधि ऋण था – यह संरचना आज भी विद्यमान है। युद्ध के पश्चात के वर्षो में भी ग्रामीण ऋण प्रावधान के प्रति अत्याधिक चिन्ता बनी रही। 1945 से 1950 के बीच आधे दर्जन से अधिक समितियों का गठन किया गया। इन सभी प्रयासों के बावजूद 1951 तक सहकारी संस्थाओं से ऋण प्रावधान काफी कम रहा, जिसमें कृषकों को सहकारी संस्थाओं से ऋण प्रावधान काफी रहा जिसमें कृषकों को सहकारी संस्थाओं से ऋण की पहुँच 3.3 प्रतिशत तथा वाणिज्य बैंको से 0.9 प्रतिशत मात्र थी। इसके अलावा साहूकारो से आपूर्तित निधियों, उच्च ब्याज दरों तथा अन्य अतिब्याजी प्रथाओं के अधीन थी और

तद्नुसार साहूकारी संबन्धी कानून इस प्रकार की कुप्रथाओं को रोकने के लिए बने थे।

अखिल भारतीय ग्रामीण वित्त सर्वेक्षण (1954) की रिपोर्ट में ग्रामीण वित्त के लिए विस्तृत ऋण मूलभूत सुविधा की नींव तैयार की गयी। निदेशक समिति जिसने इस सर्वेक्षण को आयोजित किया, यह पाया कि कृषि ऋण की मात्रा सही मात्रा से कम हो गयी तथा सही स्वरूप की नहीं है, सही प्रयोजन को पूरा नहीं करती है तथा कई बार सही व्यक्तियों तक पहुंच भी नहीं पाती है। समिति ने यह भी देखा कि कृषि ऋण के क्षेत्र में सहकारी संस्थाओं का निष्पादन कई प्रकार से अभावपूर्ण था, परन्तु उसी समय कृषकों को ऋण प्रसार करने में सहकारी संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है और इसलिए सारांश यह है कि ''सहकारिता विफल हो गयी, परन्तु सहकारिता को सफल होना होगा।''

उक्त समिति ने सहकारी संस्थाओं को, कृषि को, ऋण उपलब्ध करवाने की अन्य एजेन्सी के रूप में देखने के अलावा, विशिष्टकृत क्षेत्रों जैसे विपणन, संसाधन, भण्डारण और माल गोदाम मे कृषि के लिए ऋण उपलब्ध कराने में वणिज्य बैंको के लिए एक सुनिर्धारित भूमिका का समर्थन किया। इसके प्रति भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना तथा इसके माध्यम से ग्रामीण तथा अर्ध–शहरी क्षेत्रों में वाणिज्य बैंको के विस्तार की सिफारिश की गयी। अतः भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना तथा भारतीय इंपीरियल बैंक के भारतीय स्टेट बैंक में रूपांतरण में कृषि ऋण के अपर्याप्त विस्तार संबन्धी चिंता की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

ग्रामीण वित्त के प्रकार

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने और विभिन्न कार्यो हेतु उचित समय पर वित्त देने का प्रयास आवश्यक है। इस प्रकार विभिन्न उद्देश्यों के लिए ग्रामीण वित्त को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित कर सकते है।

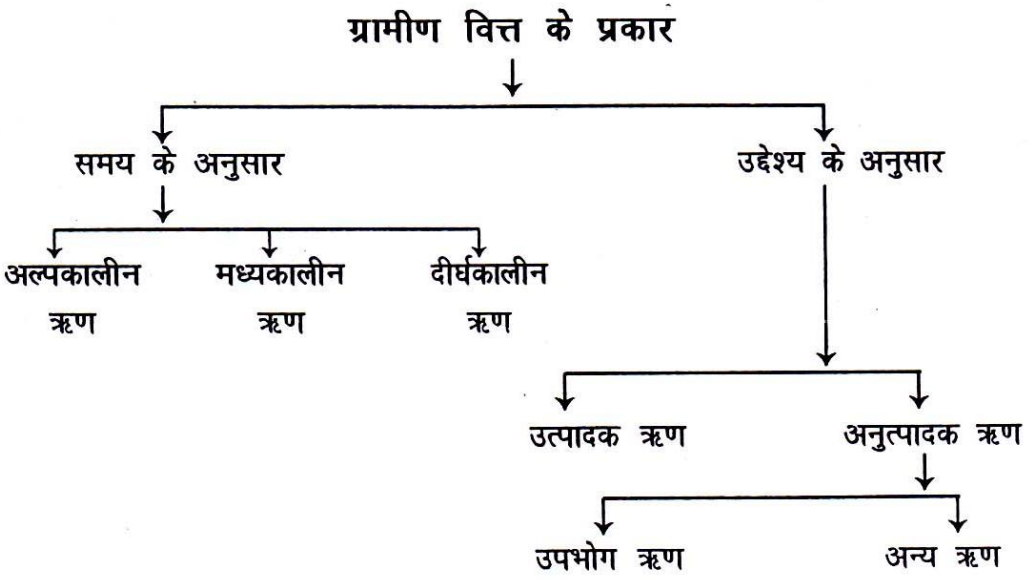

अल्पकालीन ऋण

खेती के लिए 15 मास तक के ऋण अल्पकालीन ऋण कहलाते है। अल्पकालीन ऋणों की आवश्यकता खाद, बीज तथा कीटनाशक औषधियां खरीदने और फसल बोने से लेकर काटने तक के खर्च चलाने के लिए होती है। इस प्रकार के ऋण प्रायः फसल काटने पर ही चुका दिये जाते है।

मध्यकालीन ऋण

मध्यकालीन ऋण 15 मास से लेकर 5 वर्ष तक की अवधि तक के लिए दिये जाते है। मध्यकालीन ऋण खेती के लिए सिंचाई व्यवस्था करने (कुआ खोदने) जमीन को समतल करने, पशु खरीदने या खेती के लिए मंहगे कृषि यन्त्र खरीदने के लिए दिये जाते है। मध्यकालीन ऋण की राशि भी अल्पकालीन ऋण राशि से कुछ अधिक होती है। यह ऋण राशि ऋणी अपनी भूमि/मकान/एफ0डी0 को बन्धक बनाकर प्राप्त कर सकता है।

दीर्घ कालीन ऋण

पाँच वर्ष से अधिक अवधि हेतु कृषक द्वारा अतिरिक्त भूमि खरीदने, भूमि में स्थाई सुधार करने, ऋण अदा करने और मंहगे कृषि–यन्त्र खरीदने के लिए, लिए गये ऋण दीर्घकालीन ऋण कहलाते हैं। कृषक इन ऋणों को अनेक वर्षों में मासिक, छमाही या वार्षिक किश्तों के रूप में थोड़ा–थोड़ा करके चुकाया करते हैं। यह ऋण मध्यकालीन ऋण की धनराशि से अधिक होते हैं। यह ऋण बैंक भूमि, मकान या अन्य किसी दीर्घकालीन एफ.डी. के विरूद्ध विकल्प जारी करता है। इसके साथ ही वह ऋणी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की जमानत भी लेता है।

उत्पादक ऋण

उत्पादक ऋणों में से ऐसे उधार शामिल किये जाते है जो किसानों को कृषि क्रियाओं में सहायता देते है या अपनी भूमि उन्नत करने में सहायता देते है जैसे, बीज, खाद, कृषि, औजार आदि क्रय करने के लिए, ऋण सरकार को कर का भुगतान करने के लिए, ऋण और भूमि पर स्थायी उन्नतियां करने जैसे कुओं को खोदने एवं गहरा करने, बाढ़ लगाने आदि के लिए ऋण। कृषि के वाणिज्यीकरण के उपरान्त इन कार्यों के लिए ऋणों की

माँग बढ़ी है। अधिकांश उत्पादक कार्यो के लिए वित्त की आवश्यकता को सहकारी समितियां और व्यापारिक बैंक पूरा करते है।

अनुत्पादक ऋण

अनुत्पादक ऋण अनुत्पादक ऋण वह ऋण होते है। जिन्हे उत्पादक कार्यो में उपयोग नहीं किया जाता है। यह ऋण किसान अपनी दैनिक आवश्यकताओं तथा सामाजिक रीति–रिवाजों जैसे, लगान की अदायगी करने, धार्मिक समारोह, वैवाहिक समारोह, रीति–रिवाजों को मनाने और मुकदमेंबाजी आदि के लिये लेते है।

इस प्रकार आमतौर पर अल्पकालीन ऋण शीघ्र ही फसल काटते ही चुकाया जाता है। इसलिए इसे 15 मास की अवधि के लिए दिया जाता है तथा मध्य अवधि ऋण तथा दीर्घकालीन ऋण उसे 5 वर्षो और पांच से सात वर्षो के लिए दिया जाता है।

उपभोग ऋण

अधिकांश कृषकों के पास फसल की बिक्री से इतनी रकम नही बच पाती है जिससे वे दूसरी फसल की तैयारी तक अपना जीवन निर्वाह कर सके अतः वे अपनी व्यक्तिगत और पारिवारिक उपभोग संबन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जो ऋण लेते है उन्हे उपभोग ऋण कहते है।

अन्य ऋण

कृषक उत्पादक तथा उपभोग ऋण के अतिरिक्त अन्य ऋण भी प्राप्त करते है। चूंकि काश्तकारों पर लगान का काफी बोझ होता है और यदि फसल ठीक नहीं होती है, तो वे लगान की अदायगी, मुकदमेंबाजी आदि के लिए भी ऋण प्राप्त करते है।

ग्रामीण वित्त और सहकारी साख संस्थायें

भारतवर्ष में सहकारी साख व्यवस्था का विशिष्ट महत्व है। प्राचीन काल से ही ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी समितियां प्रभुत्व जमाये हुये है। ग्रामीण क्षेत्रों मे वित्त की सुविधाएं प्रदान करने में सहकारी साख समितियां बहुमूल्य योगदान दे रही है। सहकारी समितियां अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण प्रदान करती है। देश में 2001 में लगभग 92000 प्राथमिक सहकारी साख समितियां थी। भारत मे इन साख संस्थाओं का संगठन तीन स्तर पर है :–

1. प्राथमिक सहकारी साख समितियां
   ग्रामीण स्तर पर
2. केन्द्रीय सहकारी बैंक
   जिला स्तर पर
3. राज्य सहकारी बैंक
   राज्य स्तर पर

ग्रामीण बैंक

भारतीय साख की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु 26 सितम्बर 1975 को एक अध्यादेश जारी किया गया है। जिसके अन्तर्गत 50 क्षेत्रीय बैंकों की स्थापना की जानी थी। जिसके अनुसार 2 अक्टूबर 1975 को उत्तर प्रदेश में एक राजस्थान में एक, हरियाणा में एक, पश्चिमी बंगाल में एक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित की गयी। 30 जून 1999 तक 23 राज्यों में 196 क्षेत्रीय बैंकों की स्थापना की जा चुकी है। जिनकी 14,454 शाखाएं 427 जिलो में काम कर रही है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को सुदृढ़ करने के बाद अब एक भारतीय राष्ट्रीय क्षेत्रीय बैंक (सभी 196 क्षेत्रीय बैंको को मिलाकर) स्थापित करने के लिए रिजर्व बैंक ने स्वीकृति दे दी है। यह बैंक सभी क्षेत्रीय बैंको के लिए एक सर्वोच्च बैंक होगी तथा इस पर राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण बैंक का नियन्त्रण रहेगा। अभी हाल में ही रिजर्व बैंक ने इन बैंको को वाणिज्यिक बैंक की तरह ही कार्य करने की भी अनुमति दे दी है। इससे इनके कार्यो का विस्तार होगा और लाभ अर्जित करने में सहायता मिलेगी।

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

देश की कृषि एवं ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति में बृद्धि करने एवं विभिन्न संस्थाओं के कार्यो में समन्वय करने के लिए एक राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक स्थापित करने का निर्णय दिसम्बर 1979 में तत्कालीन प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह के मन्त्रिमण्डल द्वारा लिया गया था। जिसको श्रीमती गांधी की सरकार द्वारा साकार रूप दिया गया। जिसके तहत राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक 12 जुलाई 1982 को स्थापित किया गया है, जिसने 15 जुलाई 1982 से कृषि एवं ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये शीर्ष संस्था के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

इस बैंक को कृषि पुर्नवित्त विकास निगम के वे सभी कार्य सौंप दिये गये है जो यह निगम करता था। इसी प्रकार राष्ट्रीय कृषि दीर्घकालीन कोष व राष्ट्रीय कृषि साख (स्थायीकरण) कोष भी रिजर्व बैंक ने इस बैंक को हस्तान्तरित कर दिये है।

यह बैंक अपनी आवश्यकताओं के लिए बॉण्ड या ऋण पत्र जारी कर सकती है। जिस पर केन्द्रीय सरकार की मूलधन व ब्याज की आपसी की गारण्टी होगी। यह बैंक कृषि के संबन्ध में सभी प्रकार की साख की व्यवस्था करेगी, जैसे उत्पादन व विपणन ऋण राज्य सरकारों को ऐसी ही संस्थाओं के पूंजी लाभ के लिए ऋण।

भूमि बन्धक या भूमि विकास बैंक

भारत मे दीर्घकालीन कृषि वित प्रदान करने के लिए इस प्रकार की बैंको की स्थापना की गयी है। यह बैंक कृषक की भूमि गिरवी रखकर ऋण सुविधाएं प्रदान करते है। यह ऋण लम्बी अवधि के लिए कुएं खुदवाने, पम्प सेट लगवाने, खेती संबन्धी यन्त्र व ट्रैक्टर खरीदने, आदि के लिए दिये जाते है। वर्तमान में 19 केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक व इससे संबन्धित 2585 ईकाइयां कार्य कर रही है।

इन बैंको का ढांचा द्वि–स्तरीय होता है। राज्य स्तर पर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक तथा जिला स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक होते है। 1950–51में केंन्द्रीय भूमि विकास बैंक की संख्या 5 तथा प्राथमिक विकास बैंको की संख्या 286 थी। 30 जून 1995 को 20 केन्द्रीय भूमि विकास बैंक तथा 717 प्राथमिक भूमि विकास बैंक कार्य करने लगे थे।

सरकार

राज्य सरकारों द्वारा भी कृषि के लिए वित व्यवस्था की जाती है। यह व्यवस्था सामान्यता भूमि सुधार

ऋण अधिनियम 1883 व कृषक ऋण अधिनियम 1884 के अन्तर्गत की जाती है। कृषक को जो ऋण दिये जाते है उन्हे तकावी कहते है। यह ऋण या तकावी अकाल, बाढ़ या इसी प्रकार के संकट के समय ही राज्य सरकारें देती है। ऋणों की वापसी किस्तों में होती है। जिन्हे मालगुजारी के साथ चुकाना पड़ता है। आजकल यह ऋण अधिक लोकप्रिय नही है।

1951–52 में कुल ग्राम ऋणों में इनका भाग केवल 3.3 प्रतिशत था जो 1991 में थोड़ा बढ़कर 6.1 प्रतिशत हो गया। राज्य सरकारों ने कृषि के अल्पकालीन ऋणों के लिए 350 करोड़ रूपये से 400 करोड़ रूपये के अग्रिम दिये।

भारतीय रिजर्व बैंक और ग्रामीण वित्त

कृषि वित्त के क्षेत्र में रिजर्व बैंक का योगदान सराहनीय है। इसके लिए रिजर्व बैंक द्वारा पृथक ''कृषि साख विभाग'' की स्थापना की गयी है, जो कृषि साख संबन्धी समस्याओं का अध्ययन कर रिजर्व बैंक को कृषि साख नीति निर्धारित करने की सलाह देता है। साथ ही केन्द्र एवम् राज्य सरकारों को सहकारी बैंको के संदर्भ में कृषि साख नीति के संबन्ध में उचित परामर्श देता है।

रिजर्व बैंक सहकारी बैंक के कृषि बिलों की पुनः कटौती करता है। इस प्रकार के बिलों की परिपक्वता अवधि 15 माह से कम होनी चाहियें।

रिजर्व बैंक सहकारी बैंक तथा भूमि विकास बैंकों की प्रतिभूतियां एवं ऋण पत्रों के आधार पर अल्पकालीन ऋण प्रदान करता है। जिसकी अधिकतम अवधि 90 दिन की होती है। प्राप्त बिल का नवम्बर 1982 से रिजर्व बैंक का कृषि वित्त संबन्धी कार्य, राष्ट्रीय वित्त एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबर्ड) सम्पन्न कर रहा है। संगठित ग्रामीण साख के क्षेत्र में नाबार्ड एक शीर्ष बैंक है जो ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन कार्यो के लिए साख प्रदान करता है। बैकिंग क्षेत्र की संस्थाओं के माध्यम से यह बैंक एवं ग्रामीण साख के लिए पुर्नवित्त की सुविध प्रदान करता है।

नाबार्ड द्वारा कृषि विनियोग हेतु 25 वर्ष के लिए दीर्घकालीन साख, अनुसूचित व्यापारिक बैंको, भूमि विकास बैंको एवं ग्रामीण क्षेत्रीय बैंको को प्रदान की जाती है।

राष्ट्रीय ग्रामीण बैंक ने वर्ष 2000–01 के दौरान निवेश ऋण पुर्नवित्त के अन्तर्गत वाणिज्य बैंको, राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंको, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको, राज्य सहकारी बैंको आदि को 6158 करोड़ का पुर्नवित्त संवितरित किया। पिछले वर्ष की तुलना मे इसमें 18 प्रतिशत की बृद्धि हुई।

कृषि क्षेत्र में प्राकृतिक संकट के कारण कभी–कभी सहकारी बैंको का किसानों से ऋण भुगतान नहीं हो पाता जिससे वे रिजर्व बैंक का भुगतान नहीं कर पाते। इस कठिनाई को दूर करने के लिए स्थिरीकरण कोष की स्थापना की गयी है जो राज्य सहकारी बैंक के अन्तर्गत स्थापित होता है। इसके माध्यम से संकट की स्थिति में अल्पकालीन ऋणों को मध्यकालीन ऋणों में बदल दिया जाता है। इसके लिए यह शर्त है कि फसलों की क्षति 50 प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए, इसके लिए वित्तीय सहायता रिजर्व बैंक द्वारा की जाती है।

रिजर्व बैंक द्वारा ''राष्ट्रीय साख(दीर्घकालीन) कोष प्रथम वर्ष में रूपये 10 करोड़ डालने की व्यवस्था की गई और आगामी पांच वर्षो में प्रतिवर्ष कम से कम 50 करोड़ रूपये डालने का निश्चय किया गया। इस कोष की राशि का प्रयोग निम्न पांच कार्यो के लिये किया जाता है।

1. प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से सहकारी साख संस्थाओं की पूंजी खरीदने के लिए राज्य सरकारो को 20 वर्ष की अवधि के ऋण देना।
2. कृषि साख व्यवस्था के लिए राज्य सहकारी बैंको को 15 मास से 5 वर्ष तक के ऋण देना। इन ऋणों के ब्याज तथा मूल के भुगतान की राज्य सरकार द्वार गारन्टी होना आवश्यक हे।
3. केन्द्रीय भूमि विकास बैंक को 20 वर्षो तक के लिए ऋण देना।
4. केन्द्रीय भूमि विकास बैंकों से ऋण पत्र खरीदना।

रिजर्व बैंक राज्य सरकारों को भी ऋण प्रदान करता है। जिसके माध्यम से सरकार सहकारी संस्थाओं की अंश पूंजी क्रय करती है। ये ऋण दीर्घकालीन होते है। जिससे ग्रामीण वित्त की व्यवस्था की जाती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि रिजर्व बैंक कृषि वित्त के क्षेत्र में अल्पकालीन मध्यकालीन तथी दीर्घकालीन सुविधाएं प्रदान करता है तथा इस क्षेत्र में रिजर्व बैंक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। पिछले कुछ वर्षो से कृषि वित्त का अधिकांश दायित्व नाबार्ड के हाथ में आ गया है जो रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार कृषि वित्त की सुविधाओं का विस्तार कर रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आर0डी0 सक्सेना एवं भण्डारीः भारतीय बैंकिंग विकास एवं समस्यायें, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली*
2. *बी0एस0 भाटिया, को–आपरेटिव बैंकिंग–लीवर आफ रूरल इकोनोमी (दीप एण्ड दीप)*
3. *श्याम लाल गौड़ः विकासमान बैंकिंग एवं ग्रामीण विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।*
4. *ईश्वर, धींगरा : ग्रामीण अर्थव्यवस्था, सुल्तान एण्ड सन्स, नई दिल्ली*
5. *एस0एन0 अग्रवालः भारतीय अर्थव्यवस्था (विकास एवं नियोजन), विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1992*
6. *डा0 जी0सी0सिंघईः मुद्रा एवं बैंकिंग, साहित्य भवन, आगरा, 1999*
7. *Jaiswal,G.C.R.: Bank Finance to Corporate sector in India*
8. *Lal,R.: Agricultural Devlopment through Co-Operative Banks.*
9. *Singh, Balwinder : Agricultural Credit, Sources Problem & Emerging Issues -2016*
   10-Muhammad Yunus : Banker to the Poor: The Story of the Grameen Bank-2017
10. *चट्टोपाध्याय, बी0सी0ः रूरल डेवलपमेंन्ट प्लानिंग इन इण्डिया–1988*
11. *डावर, एस0आर0ः लॉ एण्ड प्रैक्टिस ऑफ बैंकिंग, प्रोगेसिक कार्पोरेशन प्रा0लि0,बम्बई, 1973*

12. *इलियास, एस0एच0: आपरेशन प्राब्लम्स ऑफ रूरल बैंकिंग, बोरा एण्ड कं0, बम्बई, 1967*
13. *घोष,डी0एन0 : बैंकिंग पालिसी इन इण्डिया–ऐन इवैलुएशन एलाइड पब्लिशर प्रा0लि0, बम्बई, 1979*
14. *गुप्ता,एल0सी0: बैंकिंग एण्ड वर्किंग कैपिटल फाइनेंस, मैकमिलन कं0 ऑफ इण्डिया लि0, कल्कत्ता, 1978*
15. *जोशी, एन0सी0: इण्डियन बैंकिंग, आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1981*
16. *लाल, दुदशन : लोन्स स्माल इंडस्ट्रीज एन्ड स्माल बोरोअर्स, नई दिल्ली, 1982*

प्रतिवेदन एवं प्रकाशन

17. *क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के वार्षिक प्रतिवेदन*
18. *ग्रामीण बैंक ऑफ इण्डिया बुलेटिन*
19. *रिपोर्ट आन ट्रेण्ड एण्ड प्रोग्रेस ऑफ बैंकिंग इन इण्डिया (भारतीय रिजर्व बैंक)*
20. *रिपोर्ट आन रूरल बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी (1972)*
21. *क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम, (1976)*

पत्रिकायें

22. *योजना*
23. *उद्योग व्यापार पत्रिका*
24. *सांख्यिकी पत्रिका जनपद शाहजहाँपुर (कार्यालय अर्थ एवं संख्याधिकारी, शाहजहाँपुर)*
25. *कुरूक्षेत्र*
26. *इण्डियन बैंक बुलेटिन*